

मन ज्ञात है; ज्ञात वह है जिसका अनुभव हम कर चुके हैं। उसी माप से हम अज्ञात को जानने का प्रयास करते हैं। किंतु यह बात स्पष्ट है कि ज्ञात कभी अज्ञात को नहीं जान सकता; यह केवल उसी को जान सकता है जिसका अनुभव इसने किया है, जो इसने सीखा है, संचित किया है। क्या मन अज्ञात को जानने की अपनी असमर्थता के सत्य को देख सकता है?

निश्चित ही, यदि मैं स्पष्ट रूप से देख लूं कि मेरा मन अज्ञात को नहीं जान सकता, तो भीतर पूर्णतः मौन होता है। यदि मुझे ऐसा लगता है कि मैं ज्ञात की क्षमताओं से अज्ञात पर पकड़ बना सकता हूं, तो मैं बहुत शोर मचाता हूं, बातें करता हूं, मैं इस तक पहुंचने का कोई मार्ग खोजने का प्रयास करता हूं, परंतु यदि मन को, अज्ञात को जानने हेतु अपनी पूर्ण अक्षमता का एहसास हो जाए, यदि इसे इस बात का बोध हो जाए कि यह अज्ञात की ओर एक कदम भी नहीं बढ़ा सकता, तब क्या होता है? तब मन चुप हो जाता है। यह हताश नहीं है, अब यह कुछ भी नहीं खोज रहा है।

खोज की गतिविधि ज्ञात से ज्ञात की ओर ही हो सकती है; मन तो बस यही कर सकता है कि जान ले कि यह गतिविधि अज्ञात को कभी नहीं खोज पाएगी। ज्ञात की ओर से की गई प्रत्येक चेष्टा ज्ञात के क्षेत्र में ही होती है। यही एक बात है जो मुझे महसूस करनी होगी, जिसका मुझे प्रत्यक्ष बोध करना होगा। तब बिना किसी उद्दीपन के, बिना कोई प्रयोजन बीच में लाए, मन मौन हो जाता है।

क्या इस बात की तरफ आपका कभी ध्यान नहीं गया कि प्रेम मौन होता है?—यह किसी का हाथ पकड़ते समय, या स्नेहपूर्वक किसी बच्चे को निहारते हुए अथवा संध्या के सौंदर्य को ग्रहण करने के क्षणों में हो सकता है। प्रेम का कोई अतीत या भविष्य नहीं होता, और इसीलिए इसमें मौन की असाधारण अवस्था होती है। और बिना इस मौन के, जो कि पूर्ण रिक्तता है, सर्जन होता ही नहीं। अपनी क्षमताओं में आप बड़े चतुर हो सकते हैं; किंतु जहां सर्जन नहीं है, वहां विनाश है, क्षय है, और तब मन का क्षरण होने लगता है, वह मुरझा जाता है, बिखर जाता है।

जब मन रिक्त, मौन होता है, जब यह पूर्ण निषेध की अवस्था में होता है—जो स्तब्धता नहीं है, न ही विधिपरक होने का विपरीत है, अपितु एक पूर्णतः भिन्न अवस्था है जिसमें समस्त विचार का अवसान हो गया है—केवल तभी उसका आविर्भाव संभव है, जो अनाम है।

मुंबईZ, 06 जनवरी 1960